Upashastriya Vidha Thumri : Ek Loktatvik Adhyayan

उपशास्त्रीय विधा ठुमरी : एक लोकतात्विक अध्ययन

ABSTRACT OF THE THESIS SUBMITTED FOR THE AWARD OF THE DEGREE OF

DOCTOR OF PHILOSOPHY (PH. D.)

IN

MUSIC- VOCAL

RESEARCHER

DANDEKAR SUKHADA AJIT

GUIDE

DR. ASHWINI KUMAR SINGH

H. O. D.

DR. RAJESH KELKAR

DEAN

DR. RAJESH KELKAR

DEPARTMENT OF INDIAN CLASSICAL MUSIC-VOCAL,

FACULTY OF PERFORMING ARTS,

THE MAHARAJA SAYAJIRAO UNIVERSITY OF BARODA,

VADODARA- 390001.

DECEMBER, 2021

REG. NO.: FOPA/49

REG. DATE: 07/10/2015

उपशास्त्रीय विधा ठुमरी : एक लोकतात्विक अध्ययन

सारांश

प्रस्तुत शोध प्रबंध 'उपशास्त्रीय विधा ठुमरी: एक लोकतात्विक अध्ययन' का उद्देश्य सांगीतिक लोक तत्त्वों के सन्दर्भ में उपशास्त्रीय विधा ठुमरी का अध्ययन करना है | इन सान्गीतिक लोक तत्वों के परिपेक्ष्य में ठुमरी के विविध आयामों- पक्षों का अध्ययन होने से इस विधा के अभ्यासार्थियों में इस विधा के प्रति समझ में वृद्धि होगी तथा विधा के प्रायोगिक पक्ष- प्रस्तुतीकरण में सहायता मिलेगी |

इस शोध कार्य को सिद्ध करने हेतु सर्वप्रथम ठुमरी विधा के विषय में उपलब्ध प्रकाशित साहित्य एकत्रित किया गया | ठुमरी की रचनाओं को भी एकत्रित किया गया जो कि पुस्तकों में प्रकाशित रूप में एवं रेकोर्डिंग के रूप में हैं | इन रचनाओं के संग्रह को इस शोध प्रबंध के अंत में 2 परिशिष्टों में समाविष्ट किया गया है | इस विधा के कुछ निष्णात कलाकारों एवं विद्वानों के साक्षात्कार किए गए | ठुमरी के स्वर-पक्ष, ताल-पक्ष एवं साहित्य-पक्ष को लोक-तत्त्वों के संदर्भ में अध्ययन किया गया |

अभ्यास को कुल छह अध्यायों में विभाजित किया है | प्रथम अध्याय में ठुमरी विधा का परिचय दिया है तथा शब्द 'उपशास्त्रीय' एवं 'लोक तत्व' इनको व्याख्यायित किया है | साथ ही साथ इस शोध कार्य का परिसीमन एवं इसकी मर्यादाओं की चर्चा की गयी है | द्वितीय अध्याय में ठुमरी के इतिहास की चर्चा एवं वर्तमान में ठुमरी की स्थिति के विषय में चर्चा की गयी है | ठुमरी की उत्पत्ति का निश्चित बिन्दु निर्धारित नहीं हो सकता | श्रृंगारिक सुकुमार वृत्ति के गीत प्रकारों की परंपरा भारतीय समाज में काफी पुरानी है | संभव है कि यही प्रकार ठुमरी के 'पूर्वज' भी रहें हों | सत्रहवीं शताब्दी से पहले भारतीय संगीत के क्षेत्र में 'ठुमरी' इस विशिष्ट नाम से कोई गीतप्रकार प्रकाश में नहीं था | केवल अवध दरबार अठारवीं शताब्दी में प्रवेश के बाद ही उसे विशिष्ट सांगीतिक विधा का स्थान मिला | इसके बाद ठुमरी के नृत्य सहाय्यक गान-प्रकार से लेकर स्वतंत्र गायन-वादन शैली बनने तक का प्रवास, बनारसी तथा पंजाबी अंग का विकास एवं वर्तमान स्थिति में ठुमरी की प्रस्तुति इन विषयों को समाविष्ट किया है | तृतीय अध्याय में ठुमरी विधा के अंतर्गत प्रस्तुत होनेवाले होली, झूला, कजरी, चैती इन लोक संगीत के प्रकारों की माहिती दी गई है | चतुर्थ अध्याय ठुमरी विधा में राग एवं ताल की स्थिति पर चर्चा की गयी है | प्रकाशित रचनाएँ राग खमाज तथा उसके मिश्र रूप, राग काफी और मिश्र रूप तथा राग भैरवी और उसके मिश्र रूप में सबसे अधिक प्राप्त हैं | राग भैरवी और मिश्र रूप, राग खमाज और उसके मिश्र रूप तथा राग पीलू और उसके मिश्र रूपों में प्रस्तुतीकरण अधिक लोकप्रिय है | प्रकाशित साहित्य में सबसे अधिक रचनाएँ त्रिताल के विविध रूपों में और उसके बाद दीपचंदी तथा दादरा में उपलब्ध है | प्रस्तुतीकरण के

समय सबसे अधिक प्रमाण दादरा तथा कहरवा तालों में बंधी रचनाओं का होता है | विलंबित रचनाओं के लिए त्रिताल से अधिक जत ताल का प्रमाण रहा है | पंचम अध्याय में यह स्पष्ट होता है कि ठुमरी के गीतों की भाषा मुख्य रूप से ब्रज भाषा तथा अवधी, भोजपुरी, खड़ी बोली आदि के विभिन्न रूपों में पाई जाती है | इसमें समय के साथ कोई अधिक परिवर्तन नहीं आया | विषय वस्तु में सामान्य नायिका के मन के भाव सबसे अधिक प्रमाण में पाए जाते हैं | अन्य प्रचुर मात्रा में दिखनेवाला विषय है श्रीकृष्ण | लगभग सभी रचनाएँ संयोग अथवा वियोग श्रृंगार के रस को ही परिपोषित करती हैं | षष्टम अध्याय उपसंहार है जिसमें पूर्ववर्ती पाँचों अध्यायों का सार दिया गया है | इसमें की गई चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि ठुमरी विधा के स्वर-पक्ष, ताल-पक्ष और साहित्य-पक्ष में वर्तमान समय के सन्दर्भ में साहित्य-पक्ष में लोक-तत्व का निर्वाह सर्वाधिक हो रहा है , क्योंकि ठुमरी के विकास क्रम के दौरान यह पक्ष सबसे कम परिवर्तित आयाम रहा है | जैसे जैसे ठुमरी स्वतंत्र गान-विधा के रूप में स्थापित हो गई और वर्तमान में उसे अति उच्च, भाव-रसपूर्ण एवं चुनौतीपूर्ण कला का स्थान प्राप्त हुआ है तो उसी प्रमाण में साहजिक रूप से उसके सांगीतिक कला पक्ष के दो (स्वर और ताल) आयामों में भी परिवर्तन और परिष्करण होते गए हैं | इतना होते हुए भी ठुमरी अभी भी अपने लोक मूल को पकडे हुए है क्योंकि यह उसके विकास क्रम का अभिन्न अंग है और लोक संगीत की धारा से भी उसका सिंचन हुआ है | इस लिए शोधार्थी का यह मत बना है कि ठुमरी विधा की अपनी विशिष्ट पहचान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा इसके लोक मूल अर्थात इसमें निहित लोक तत्व हैं | अपने विकास के क्रम में यह विधा समय की आवश्यकतानुसार अपने आपको ढालने में सफल रही है और शास्त्रीय तत्व एवं लोक तत्वों का प्रमाण समयानुसार बदलता रहा है | वर्तमान समय में ठुमरी के स्वर-पक्ष एवं ताल-पक्ष विलंबित प्रस्तुतियों में संगीत के शास्त्रीय तत्वों को अधिक लिए चलते हैं जब कि मध्य एवं द्रुत प्रस्तुतियों में लोक तत्वों का अस्तित्व अधिक दृष्टिगोचर होता है | ठुमरी के साहित्य पक्ष में लोक तत्वों का ही आधिक्य दृष्टिगोचर होता है |

****